उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा 'धर्मयुग सर्जना पुरस्कार' से सम्मानित

मूल्य : ₹ 40/-

सितम्बर-दिसम्बर 2023

निकट-36

संपादक : कृष्ण बिहारी

इस अंक के आकर्षण

मोहम्मद ताहिर
सुभाष नीरव
शची मिश्रा
कौशल पाण्डेय
प्रताप दीक्षित
श्रुति मिश्रा
प्रतिमा श्रीवास्तव
विभा रानी
राजेश कदम
आकांक्षा पारे
अयोध्यानाथ मिश्रा
आरिफ़ महमूद
सदानंद गुप्त
सुभाष राय
धनंजय कुमार सिंह
देवेन्द्र पाठक महरूम
समीक्षा तैलंग

समीक्ष्य पुस्तकों के रचनाकार

सुषमा मुनीन्द्र
बलराम
सुरेश अवस्थी
श्याम सुंदर चौधरी

निकट

कथा-प्रधान त्रैमासिकी

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'धर्मयुग सर्जना पुरस्कार' से सम्मानित

संयुक्त अरब इमारात से शुरू अब भारत से प्रकाशित

वर्ष-17, अंक-36, सितंबर-दिसंबर 2023, मूल्य-₹40

व्यवस्थापक
अशोक कुमार
सलाहकार
राजेन्द्र राव
संपादक
कृष्ण बिहारी
उप-संपादक
रामनारायण त्रिपाठी, लखनऊ
धनंजय सिंह
राधेश्याम यादव,
अबू धाबी
भूपेंद्र कुमार
सहयोगी-राजवंत राज,
रियाज़ अहमद
पारुल तोमर
व्यवस्थापक
अभिनव त्रिपाठी
कानूनी सलाहकार
राजेश तिवारीएडवोकेट
2/241, विजय खण्ड,
गोमती नगर, लखनऊ

भारतीय भाषा संवर्धन संस्थान द्वारा सहयोग प्राप्त

आवरण – राजवंत राज

रेखांकन – शशिभूषण बडोनी

मूल्य :
भारत में 40/- रुपये
खाड़ी में 20 दिरहम
यू.के. और अमेरिका में 5 डॉलर

सदस्यता शुल्क
1 वर्ष के लिए = रु 500/-
3 वर्ष के लिए = रु 1500/-
निम्न खाता सं. में
नगर / चेक / डी.डी. जमा करें
बैंक का नाम : बैंक ऑफ बड़ौदा
शाखा : सराय मसवानपुर ब्रांच, कानपुर
खाता सं. Krishna Behari Tripathi
28050100010192
IFSC : BARB0SAPRBS

रचनाएं भेजने का पता
निकट कार्यालय-
HIG-46, B BLOCK, PANKI
KANPUR-208020
Mo. 6307435896
ईमेल:
krishnatbihari@yahoo.com

इस अंक में...

संपादकीय – *समय से बात* – आप क्या हैं, इस पर ज़रा सोचिए... -02
पिछले अंक पर प्रतिक्रिया – कश्मीरा सिंह
ललित निबंध - सदानंदप्रसाद गुप्त – बिछुआ ने डंक मारा
कहानियाँ
मो. ताहिर – **सब्जेक्ट**
सुभाष नीरव – **विस्फोट**
शैलेय – **पृथ्वी की अतल उदासी में**
शची मिश्रा – **तकिये**
प्रताप दीक्षित – **आत्मतर्पण**
प्रतिमा श्रीवास्तव – **ज़िंदगी खूबसूरत है**
विभा रानी – **काली चहा**
अयोध्यानाथ मिश्रा – **क्या यही नियति है**
अशोक गुजराती – **आप भी**
आकांक्षा पारे – **गुड़हल**
सुधा जुगरान - **दूर के दर्शन का सुख**
अनूदित रचना-
तमाशाई – मूल लेखक – आरिफ़ महमूद, अनुवाद – प्रियंका गुप्ता
लघुकथाएं
शशिभूषण बडोनी, मनमोहन कौशिक, हरीश प्रकाश गुप्त
निरुपमा सिंह, डोली शाह
कवितायें
नीरज नीर, नीलोत्पल रमेश, शिव कुमार कुशवाहा, अरविंद यादव,
देवेंद्र कुमार पाठक महरूम, संजय सरोज, अनुजीत इकबाल,
सुरजीतदास गुप्ता, साधना मिश्रा , लाल देवेंद्र कुमार श्रीवास्तवा
गज़ल – राजेंद्र तिवारी
संस्मरण –
सुभाष राय – **आदमी लौटता नहीं स्मृतियाँ...**
धनंजय कुमार सिंह - **मैंने इन्हें करीब से देखा**
पुस्तक समीक्षा
बलराम की पुस्तक पर अमरीक सिंह दीप
उर्मिला शुक्ल की पुस्तक पर सुषमा मुनीन्द्र
कृष्ण बिहारी की पुस्तक पर राजेश कदम
डॉ. मीना अग्रवाल की पुस्तक पर पारुल तोमर
नवोदित प्रवाह के वार्षिक अंक पर वीरेंद्र आस्तिक
सुरेश अवस्थी की पुस्तक पर कृष्ण बिहारी
संदीप तोमर की पुस्तक पर ज्योति स्पर्श
व्यंग्य
समीक्षा तैलंग – **अफ़सराइन**

अगला अंक – निकट 37 / 2024
उपहार अंक – कहानी विशेषांक

स्वामी, सम्पादक कृष्ण बिहारी एच.आई.जी. – 46, पनकी, बी ब्लाक, कानपुर – 208020 से प्रकाशित
मुद्रक अमन प्रकाशन कानपुर- 9415475817, 8419891954

समय से बात – 36

आप क्या हैं इस पर ज़रा सोचिए ...

पिछले अंक में मैंने लिखा था कि हम अनपढ़ होते जा रहे हैं जिसका लब्बोलुआब था कि हमने पढ़ना या तो छोड़ दिया है या फिर बहुत कम कर दिया है । इसके कारण भी मैंने लिखे थे । अभी कुछ दिन पहले पंकज सुबीर के स्तम्भ 'अपना पन्ना' में पढ़ा कि अगर आप चौबीसो घंटे लेखक बने हुए हैं तो ...

और दो दिन पहले सुभाष राय की पोस्ट पढ़ी कि आप कितने लोगों को बताएँगे कि आप लेखक हैं !

पाठकीयता के संकट पर पिछले कई वर्षों से अनेक संपादकों,लेखकों और हिन्दी के अलावा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वानों ने बहुत लिखा है मगर यह संकट कम होने की जगह गहराता गया है । इस विषय पर फिर – फिर कुछ न कुछ लिखा भी जाएगा किन्तु इस समय मेरे मन में पंकज सुबीर और सुभाष राय के प्रश्न घूम रहे हैं । पहले मैं इन दोनों रचनाकार संपादकों की लिखी बातों का उल्लेख करना चाहूँगा ताकि जिन्होंने विभोम स्वर में सुबीर का कॉलम और राय साहब की पोस्ट फेसबुक पर न पढ़ी हो , वे भी विषय-वस्तु जान सकें ।

पंकज सुबीर ने लिखा – **आप यह जो पूरे समय लेखक बने रहते हैं न , यह भी आपका ईगो ही है । आप लेखक हैं, साहित्यकार हैं , यह बहुत अच्छी बात है किन्तु यदि आप पूरे समय लेखक या साहित्यकार हैं , तब आपके लिए चिंता की बात है । आप पूरे समय लेखक ही बने रहते हैं , कभी भी सामान्य इंसान नहीं बनते , तब आपको एक बार सोचने की ज़रूरत है । असल में यह एक मनोरोग है जिसने आपको ग्रस्त कर लिया है ...**

सुभाष राय ने लिखा – **आप कितने लोगों को बताएँगे कि आप लेखक हैं , कवि हैं । कितने वाट्सऐप ग्रुप पर डालेंगे , कितने लोगों को इनबॉक्स शेयर करेंगे कि आपने बहुत क्रांतिकारी कवितायें लिखी हैं , कि आपने सैकड़ों मंचों पर काव्यपाठ किया है , कि आपकी रचनाएँ पाठ्यक्रम में शामिल हो गई हैं , कि आप सौ मूर्धन्य लेखकों के क्लब में शामिल हैं, कि आपकी किताब ब्लॉकबस्टर रही , कि आपके दस संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । आप लाइक्स की उम्मीद में कितने लाइक्स देंगे, कितनी बधाइयाँ , शुभकामनाएँ, कितनी शोकांजलियाँ, श्रद्धांजलियाँ लिखेंगे । प्रशंसा की प्रत्याशा में कितनी प्रशंसाएँ लिखवाएँगे , कितनी जगह छपवाएंगे । आप कितने वेश बदलेंगे खुद को बनावटी काव्य गरिमा से ढंकने के लिए। कितनी बार अपनी तस्वीरें शेयर करेंगे अपनी सक्रियता की । आप और कितने पागल होंगे अपनी पहचान के लिए ...**

मैं मानता हूँ कि सूचना देना या पाना मनुष्य का अधिकार और कर्तव्य दोनों है । पहले इसके लिए पत्र लिखने का चलन था और बहुत लोकप्रिय था । रचनाकारों , संपादकों और पाठकों के बीच संवाद का यही एक माध्यम था । एक-दूसरे से परिचय , विचार-विमर्श आदि सब पत्रों के ही माध्यम से होते थे । फोन सबके पास नहीं था और मिलना इसलिए कठिन था कि यातायात भी उतना सुगम नहीं था । जब कभी अपने शहर में कोई कार्यक्रम हो तब बाहर से आने वाले साहित्यकारों के दर्शन हो पाते थे । साहित्यकार भी इतने नामी-गिरामी होते थे कि उनसे बोलने-बतियाने के लुत्फ़ के पीछे संकोच सबसे बड़ा रोड़ा होता था । लेखकों ने अपनी रचनाधर्मिता से खुद को स्थापित किया था । लोग उन्हें पढ़ते थे । पढ़कर जानते थे । स्वाध्याय से पढ़ा-लिखा होना ही महत्त्वपूर्ण होता था । उस दौर के सम्बन्धों में एक गरिमा होती थी । आज जैसा हाल और तकनीक से लैस वातावरण नहीं था ।

ऊपर जिन दो रचनाकार संपादकों के लिखे को मैंने कोट किया है , उन्होंने आज के वातावरण का कटु सत्य लिखा है और उससे आपको यानी आप लेखकों और कवियों (आप के बीच मैं भी हूँ) को बात कुछ-कुछ चुभी ज़रूर होगी । पाठकों इसलिए नहीं लिखा कि पाठक बचा कहाँ और आपने उसे बचने कहाँ दिया । पाठकों को तो आपने अपने लिए गैरज़रूरी मान ही लिया है । पाठक हों , न हों ; सूचना के माध्यम फेसबुक , इंस्टाग्राम और भी न जाने क्या-क्या तो हैं ही । लोग न मिलें तो बेवनार है , वर्चुअल सेमिनार है । ख़ैर , संपादक मैं भी हूँ । और लगभग सुभाष राय की पीढ़ी का ही हूँ , पंकज मुझसे दस-पंद्रह वर्ष छोटे होंगे लेकिन लेखन , सम्पादन और प्रकाशन में बेहतर काम कर रहे हैं । मेरे विचार राय साहब और पंकज सुबीर से अलग नहीं हैं । हाँ , मैं थोड़ा सख़्त मिजाज हूँ तो आज के रचनाकारों के किए गए व्यवहार के प्रति काफी तीखी प्रतिक्रिया भी करता हूँ । जब मैं आज के रचनाकार कहता हूँ तो उस पीढ़ी की बात कर रहा हूँ जो सूचना क्रान्ति की उपज है । इंटरनेट की सुविधा ने ओरकुड,ब्लॉग, फेसबुक पर अभिव्यक्ति के जो मौके दिये उसने रातोरात रचनाकारों की खेप पर खेप फसल की आवक बढ़ा दी । बिना खाद-पानी के यह फसल ऐसी लहलहाई कि इसने कुकुरमुत्तों को भी मात दी है । जिसे देखो वही

तुर्रम खाँ हो गया । अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता हर किसी को होनी चाहिए लेकिन इतनी भी क्या कि आप अपठनीय , भाषा और साहित्य की तनिक भी समझ न रखते हुए , व्याकरण की दुर्दशा करते हुए सब कुछ उगलने के लिए तत्पर होकर उन सबको अपनी अभिव्यक्ति से सड़ाएँ जिन्हें आप जानते तक नहीं । इन सबके अनुसार इनके हजारों फालोअर हैं और इनके लिखे की रीच लाखों में है । मुझे तो नहीं मालूम पर हो सकता है कि आप किसी को जानते हों जिसकी रीच लाखों में है । इनकी आत्ममुग्धता और आत्मप्रचार का आलम यह है कि इन्हें अपने अलावा दूसरा दूर-दूर तक छोड़िए , अपने पास भी कोई नहीं दिखता । अगर कहीं भूले से भी आपका इनसे कम या ज्यादा कोई परिचय हो गया तो फिर आपकी जान सांसत में तब तक तो रहेगी ही जबतक आप इन्हें अपने परिचय के दायरे से दूध की मक्खी की तरह निकाल नहीं फेंकते । इन्हें इनका पड़ोसी भी नहीं जानता और ये हैं कि पूरी दुनिया को जेब में लिए फिरते हैं । समाज के किसी वर्ग से इनका कोई लेना-देना नहीं मगर सर्वहारा शब्द और सामाजिक न्याय इन्हें बहुत प्रिय है । बाज़ार बनी इस दुनिया में इनके अनुसार यह मार्केटिंग है । दुर्भाग्य यह कि मार्केटिंग जैसे तिकड़मी शब्द ने मेरी और मेरी पीढ़ी के पहले के रचनाकारों को भी अपने में लपेट लिया है ।

जहां तक मैं समझता हूँ , रचना के बीज किशोरावस्था में ही अंकुरित होते हैं । पाला पड़े , सूखा पड़े , बाढ़ आए (जीवन संघर्ष कितना भी चुनौतीपूर्ण क्यों न हो) रचनाकर नहीं मरता। वह जितने कठिन संघर्ष का भोक्ता होता है उसकी रचनाएँ उतनी ही जीवंत होती हैं ।

आज कई श्रेणी के रचनाकार हैं । एक – अब बच्चे बड़े हो गए हैं । नौकरी से सेवानिवृत्ति मिल गई है तो समय ही समय है इसलिए सोचा क्यों न कुछ(यह कुछ किसी विषय का शीर्षक नहीं है) लिखा जाये ।

इनसे मैं कहना चाहता हूँ कि लेखन ठलुआपन का काम नहीं है !

दो – अफसर हैं , अफ़सराइन हैं , पैसा है तो सोचा कि लिखा जाये और सोसाइटी में , रिहाइशी टावर में , ऑफिस के गलियारे में , किटी पार्टियों में पेज़ थ्री की जगह क्यों न ली जाये । तो, लेखक/लेखिकाओं यह बात भी जान लो कि लेखन में कोई ग्लैमर नहीं है । यहाँ कोई सुपर स्टार राजेश खन्ना या देवानंद नहीं है, कोई माधुरी दीक्षित नहीं है जिसपर लोग मर मिटें ।पैसे के बल पर आप प्रकाशक खरीद सकते हैं और यह काम आप बखूबी कर रहे हैं । ऐसा करके आपने प्रकाशकों को घर बैठे वह बिजनेस दिया है जो एक मिलावटी दूध बेचने वाले के पास है। पहले प्रकाशक रचनाकार से संपर्क करते थे । कम या उचित रायल्टी देते थे ।पुस्तक की पचासों प्रतियाँ देते थे और अब आप उन्हें पैसे देते हैं और फिर बड़े गर्व से अपने ही कूड़े की प्रतियाँ अपने पैसे से खरीदकर सूचना के माध्यमों पर प्रदर्शनी लगाते हैं । आपको लज्जा नहीं आती क्योंकि आप कैश और काइंड की फूहड़ असभ्यता में अपना व्यक्तित्व नीलाम कर चुके हैं!

आज के हिन्दी रचनाकार में स्वाभिमान नहीं है । पिछले तीस वर्षों के मेरे अनुभव ने मुझे यह लिखने को विवश किया कि आज हिन्दी का रचनाकार बहुत अनपढ़ ,स्वार्थी , मतलबी , लालची, मौकापरस्त , सुविधापरस्त, चालाक और सब कुछ है , बस , उसके पास अगर कुछ नहीं है तो रचना और स्वाभिमान । वह दयनीय है , कंजूस है और हर सुविधा आम आदमी पार्टी के नेता की तरह बांटी जाती मुफ़्त की रेवड़ियों की तरह मुफ़्त हथियाना चाहता है । यह रचनाकार होना नहीं , धूर्त होने की पराकाष्ठा है ! खी-खी करके दाँत चियारने और बनावटी मुस्कान लुटाने वाले रचनाकारों में से अपने को छोड़कर आप किन्हें जानते हैं यह मैं आप पर छोड़ता हूँ । आप सोचिए कि आप क्या हैं !

0 0 0

समय की बलिहारी देखिये । एक चुने हुए प्रधानमंत्री को हटाने के लिए पूरा विपक्ष लामबंद हुआ है । साँप , बिच्छू , नेवले सब साथ आ गए हैं । राजनीति में कुरसी माई-बाप और ईमान हो गया है । ये सब ईमान लाने वाले नेता हैं । सब खरबपति हैं और सबकी चिंता सामाजिक न्याय है । नई संसद का विरोध , सरकारी योजनाओं का विरोध , सनातन का विरोध , भारत का विरोध , रामचरितमानस का विरोध और हिन्दू का विरोध ! इनका विरोध कुरीतियों का विरोध नहीं है । इनका विरोध विकास का विरोध है । डेंगू,मलेरिया,एचआईवी,कोढ़ के जीवाणु तो विपक्ष में हैं । अपने जीवाणुओं को समूल नष्ट न करके यह विपक्ष पूरे देश को हर तरह से नष्ट करने में लगा है । जातिगत जनगणना की मांग करने वाले कश्मीर में अल्पसंख्यकों की जनगणना की मांग नहीं करते । देश का कोई जेन्यून नागरिक प्रधानमंत्री बने न बने क्या फर्क पड़ता है , हाँ , इन क्षत्रपों में हर किसी को प्रधानमंत्री बनना है । वोटर से इनकी अपील है – सजनी हमहूँ राजकुमार !

आठवें दशक की चर्चित लेखिका प्रेम गुप्ता मानी का असामयिक निधन हिन्दी कथा साहित्य के लिए अपूरणीय क्षति है । 'निकट परिवार' की हार्दिक श्रद्धांजलि ।

कृष्ण बिहारी

❖❖❖❖

पिछले अंक पर प्रतिक्रिया

निकट -३५ (साहित्य की विविध विधाओं का खूबसूरत गुलदस्ता)

निकट-३५ मिली।

सभी स्थायी स्तम्भों से सुसज्जित। सम्पादकीय हमेशा की तरह समयानुकूल।आज का समय प्रेम की हत्या का है। कोई साहित्यकार चुप कैसे रह सकता है ? शिव- पार्वती, सीता-राम और राधा-कृष्ण की धरती पर यदि प्रेम की हत्या होने लगी है तो साहित्य का अर्थ क्या रह जाता है? यह ब्रह्माण्ड ही गुरुत्वाकर्षण पर आधारित है। कणों या पदार्थों के बीच का आकर्षण ही इस सृष्टि का संचालक है।यह आकर्षण की मात्रा पर निर्भर करता है कि कौन किसे कब तक अपनी ओर खींचे रह सकता है? पृथिवी के आकर्षण में गुरुत्व है इसलिए वह ग्रह नक्षत्रों को अपनी ओर खींचे रहती है।तो क्या देह के आकर्षण में पुरुषत्व कमजोर पड़ जाता है जिसकी कमी वह परित्याग, तेजाब और हत्या से पूरी करने लगा है? सम्पादक का प्रश्न मानव समुदाय का प्रश्न बन गया है कि "क्या प्रेम इतना विध्वंसक हो गया है कि यह जीवन को मृत्यु में बदल देता है?" प्रेम तो जीवन देता है। पीड़ा से जन्म लेकर भी प्रेम अक्षुण्ण रहता है।शिव ने कण कण में काम का विस्तार कर सृष्टि को सुगम बना दिया। युगों-युगों तक अपनी अजस्र जीवनदायिनी धारा प्रवाहित करते हुए बीसवीं और फिर इक्कीसवीं सदी में ऐसा क्या हुआ कि प्रेम की नृशंस हत्या के प्रतिमान स्थापित होने लगे? आँसू की जगह आक्रोश के स्फुलिंग निकलने लगे मानो शिव के कपाल चक्षु खुल गए हों। वर्तमान समय को सम्पादक ने एक हाथ में विमर्श का विषय दे दिया है और दूसरे में साहित्य की सरस औषधि।

कुल बारह कहानियों में निकट की पहली कहानी सुधा ओम ढींगरा की "चलो फिर से शुरू करें" प्रवासी भारतीयों के हृदय में सनातन संस्कृति की जगमगाती ज्योति के साथ ही पीढ़ी के अन्तर के साथ सामंजस्य बैठाती दृष्टिगोचर होती है। कहानी का प्रवाह इसे एक सांस में पढ़ने वाली कहानी की श्रेणी में रखता है।

हरभजन सिंह मेहरोत्रा की कहानी "निरुत्तर" पैसे के आधार पर समाज में बने वर्ग संघर्ष की व्यथा को दर्शाती है। "सातवें वेतनमान और ऊपरी कमाई" के बावजूद मध्यमवर्ग अभी तक उसी पायदान पर लटका हुआ है। अपने बजट से निमिषा को खुश करने के बाद गिफ्टी का मन बहलाने के लिए पापा ने उससे मैंगो शेक पीने के लिए पूछा तो उसने चिढ़ाते हुए कहा "आपके पास पैसे हैं?"

अपनी कहानी "बच्चे" में विनीता शुक्ला ने मातृत्व हीनता की पीड़ा को व्यक्त किया है। स्त्री बिना मातृत्व के अधूरी है, जो सच है ! अपने घर के टंगे कैलेंडर में जब हम शिव पार्वती की गोद में गणेश कार्तिकेय को देखते हैं तो उनमें हम ईश्वर के मानवीय रूप का दर्शन करते हैं।यह तब तक चलता रहेगा जब तक सृष्टि चल रही है। अच्छी कहानी के लिए कहानीकार को बधाई।

मार्टिन जॉन की कहानी "मेरा सुप्रीम पावर" आधुनिकता को अपनी गिरफ्त में लेने की कहानी है जिससे बचना कठिन प्रतीत होता है। सुप्रीम पावर के आशीर्वाद के बिना आधुनिकता की चमकदार रोशनी प्राप्त नहीं की जा सकती। इसलिए जब मिस इंडिया "मेनका" ने अपनी कामयाबी के पीछे सुप्रीम पावर के रूप में "बाजार" का नाम लिया तो पत्रकार निरुत्तर हो गए और बाजार खिलखिलाने लगा।

डॉ. रंजना जायसवाल की कहानी "स्टैच्यू" परिस्थितियों के अजगरी मुख में समाते एक वृद्ध पिता की लाचारी की कहानी है जिसे एक ट्रेन दुर्घटना में बेटे के कटे पैर के इलाज के लिए "स्टैच्यू" का अभिनय करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस तरह की दैवीय विपत्ति के समय समाज का विमुख रहना मानवीयता के अन्त का सूचक है।

कथाकार रेखा श्रीवास्तव की कहानी "एक घर की तलाश" साम्प्रदायिक सद्भाव हेतु मनोयोग से लिखी दो अलग कौम के मिलन की कहानी है जो अधूरी-सी है। सिर्फ घर हासिल कर लेने से कुछ नहीं होता।रेवा और अशरफ को पूरी जिंदगी विषपान करना है जिसपर कहानी मौन है। आज का युग इस तरह की कहानियों की मांग करता है यदि इसे पूर्णता में लिखने का प्रयास किया जाता तो बेहतर होता। हाँ ,इस कथा ने यह अवश्य सिद्ध कर दिया कि घर में प्रेम की कमी ही बच्चों को बाहरी प्रेम की तलाश में भटकने पर बाध्य करती है।

कथाकार शेषनाथ पाण्डेय जी की कहानी "लबड़थी" हास्य-व्यंग्य के साथ ही ग्रामीण अंचलों में व्याप्त प्रधानी जैसे पद के अनुकूल सच्ची घटना जैसी प्रतीत होती है। गांव वालों को सरकारी योजनाओं का लाभ दिलवाने के लिए परधान जी की योग्यताओं और क्षमताओं की सटीक विवरणी है यह कहानी। हैदराबाद के कलेक्टर साहब जब लाभार्थी को "लबड़थी" कहते हैं तो टिकुर डर से भाग जाता है। फिर भी उसका पेंशन बन जाती है, परधान जी की कृपा से।

कानपुर के ही कथाकार राजेश कदम की कहानी "सुरेश जी.....आप" ने श्लोक "सत्यम् ब्रूयात प्रियम् ब्रूयात,न ब्रूयात सत्यम् अप्रियम्" की याद दिला दी।गलत कार्यों में लिप्त रहने वाले सुरेश जी मानसिक असंतुलन की स्थिति में उन्हीं दृश्यों को सबके सामने दुहराने लगे जिसे

पढ़कर सभी पाठक सहज नहीं रह सकते हैं। सम्पादक का प्रश्न भी है कि -"क्या सकारात्मक और रचनात्मक खबरों का टोटा पड़ गया है। क्या समाज में कुछ भी अच्छा नहीं हो रहा?"

जयराम सिंह गौर की "टीस" साफ सुथरी संस्मरणात्मक कहानी है। संस्कार और सिद्धान्त पर अडिग रहने वाले अनन्त जी मित्र सोमेश जी की भी बात नहीं मानते हुए एकलौते पुत्र के विवाह में छले गए और अन्ततः दुःख को प्राप्त हुए।

पनकी के ही कथाकार बरेन सरकार की "स्वगत" स्वागत योग्य कहानी है।माँ जब ममता लुटाती है तो उसका रूप मृण्मयी से चिण्मयी हो जाता है। माँ के इस रूप में हर पाठक अपनी माँ का स्वरूप ढूंढ़ने लगता है। आतप-ताप में डूबी स्त्री संतान के सुख में अपने को सुखी मानती है। दुःख में डूबी स्त्री की शिक्षा के प्रति समर्पण और सोच कहानी को पठनीय बनाती है। यदि हर घर में ऐसी माँ हो तो पुत्र की लेखनी चलेगी ही। एक अच्छी कहानी के लिए कथाकार को बधाई।

कहानीकार बी.एन. झा की "वारिस" वारिस के लिए तरसती उर्मिल को बेटे बहू की कोई आवभगत लुभा नहीं सकी।बेटे अंकुर और बहू रोशनी ने दुनिया जहान की खुशियां माँ पिताजी के चरणों पर लाकर रख दिया था। पिताजी इस नई दुनिया में खो गए किन्तु उर्मिल का मन सूना ही रहा। ऐसा तो हो नहीं सकता था कि बेटे बहू अपनी संतान के प्रति लापरवाह हों।वारिस के प्रति उर्मिल की ज्यादा जिद पाठकों को अखरेगी क्योंकि मनुष्य के अपने हाथ में कुछ नहीं होता।समय ही कर्ता-धर्ता होता है। बेटे बहू को नाराज कर गांव लौटी उर्मिल को तीन साल बाद वह खुशखबरी मिली जिसके लिए उसने बेटे बहू के बेइंतहा प्रेम को ठुकरा दिया था।

कहानीकार राकेश राय की "जूता" की कीमत रोजगार की तलाश करने वालों को पता चलती है।जूते पॉलिश करवाने के दरम्यान ही सगीना और जैतू की दिनचर्या स्मरण होती है और अंत मृत जैतू के द्वारा अपने लिए लाए जूते की खरीद के साथ।

बहुत दिनों के बाद खून और रिश्तों की आत्मीय महक लिए कानपुर के वरिष्ठ कथाकार अमरीक सिंह दीप द्वारा अनूदित पंजाबी कहानी "लहू का रंग कौन सा है" पढ़ने को मिली। लेखिका रेमन को बहुत-बहुत बधाई। दो भाई के बीच मनमुटाव उत्पन्न करने वाले कई कारण होते हैं जिनमें दूसरे घर से आई बहुओं का बड़ा हाथ होता है।पुत्रवत भाई जब बहकावे में आकर पटीदार जैसा व्यवहार करने लगता है तो मानसिक कष्ट स्वाभाविक है। किन्तु बात जब इज्जत की होती है तो वही भाई खूँखार शेर बन जाता है।तब किसी के मुँह से निकल सकता है कि लहू का रंग एक है भले ही भाइयों के चेहरे अलग हों। लेखिका ने मँजी हुई लेखनी से इस कहानी का सृजन किया है।

सुनील दास द्वारा लिखित बंग्ला उपन्यास अंश "तृष्णा की शांति" का हिन्दी अनुवाद वरिष्ठ कथाकार श्याम सुन्दर चौधरी ने किया है। प्रेम को भजन के माध्यम से भक्ति का स्वरूप प्रदान करने वाले चण्डीदास का पद गाते हुए हरिदास का खो जाना भी गाने वाले के हृदय के ज्वार को प्रदर्शित करता है।यह पूछने पर कि "जिसने मुझे गीत गाने लायक आवाज दी है उसे पाऊँगा कैसे ?" फकीरों की मंडली कहती "अपने गीतों में ही उसे पाओगे जैसे विद्यापति और चण्डीदास को मिले।" उत्कृष्ट कथा साहित्य की यह विशेषता होती है कि वह अपने साथ इतिहास भी लिए चलती है।यही हरिदास आगे चलकर श्री कृष्ण और चैतन्य महाप्रभु के अनन्य भक्त स्वामी हरिदास ठाकुर के नाम से प्रसिद्ध हुए।अंगक्षेत्र भागलपुर के इतिहासकार उदय शंकर अभी चैतन्य महाप्रभु पर पोस्ट डाल रहे हैं जिसमें हरिदास की चर्चा है।

निकट के इस अंक में कई रिपोर्ताज और समीक्षाएं छपी हैं जो निकट के भविष्य को सँवारने का काम करेंगी।

यात्रा वृत्तांत में नीरज नीर का "अंडमान- स्वर्ग ऐसा नहीं तो कैसा होगा?" पढ़कर मन के किसी कोने में दबी इच्छाएँ कुलबुलाने लगती हैं। अंडमान निकोबार द्वीपसमूह केन्द्र शासित प्रदेश है। वृत्तांत के माध्यम से यह जानना कि अंडमान शब्द मलय भाषा से आया है और अंडमान का नाम प्रसिद्ध देवता हनुमान के नाम पर है,सनातन की विस्तृति और समृद्धि को एक बार फिर सामने ले आया। इस यात्रा वृत्तान्त में उस कालखंड का इतिहास भी साथ चल रहा है। हनुमान को मलय भाषा में हंडुमन कहा जाता है और इसी हंडुमन से हनुमान शब्द बना। निकोबार तमिल शब्द 'नक्कावरम' से आया है, जिसका अर्थ होता है नंगे लोगों की भूमि।१०५० ई. के तंजोर शिलालेख में इस नाम का जिक्र आता है।पोर्ट ब्लेयर से पहले इसका नाम पोर्ट कॉर्नवालिस हुआ करता था।बाद में एक प्रसिद्ध सर्वेयर कैप्टन ब्लेयर, जिसने इस द्वीप समूह का सर्वे किया था, उसके नाम पर इसका नाम पोर्ट ब्लेयर पड़ा। अंडमान जाने का अर्थ ही है सेलुलर जेल देखना।जेल भ्रमण के पश्चात् लेखक ने दृढ़ता से कहा है कि "इस स्थान को आजादी के तुरंत बाद भारत का तीर्थ स्थल घोषित किया जाना चाहिए था। भारत के हर विद्यार्थी को इस जेल का विजिट करवाना चाहिए या कम से कम एक चैप्टर इस जेल के बारे में अवश्य पढ़ना चाहिए।" यह उल्लेखनीय है कि १८७२ में पोर्ट ब्लेयर के एक कैदी द्वारा वायसराय लॉर्ड मेयो की हत्या कर दी गई थी।

सेलुलर जेल का वर्णन करते हुए लेखक ने कहा है कि साइकिल के चक्के के स्पोक की तरह बना इस तीन मंजिले जेल में छह विंग्स हैं सभी विंग्स एक दूसरे की ओर पीठ किए हुए हैं ताकि एक कैदी दूसरे से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सके। सेलुलर नाम रखने के पीछे का कारण है कि इस जेल में कोई दो कैदी एक साथ नहीं रखे जाते थे।हर कैदी के लिए एक छोटा सा सेल यानि कि कोठरी बनी हुई थी। कुल ६९६ सेल हैं अर्थात् इतने ही कैदी होते थे। लेखक का कहना है कि सेलुलर जेल महज एक जेल नहीं है बल्कि भारतीय समाज के जीवित